International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
Volume-9, Issue-5 Sep - Oct – 2022
P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org
Email- editor@ijesrr.org

न्यू इंडिया : सामाजिक न्याय व परिवर्तन की सशक्त प्रतीक द्रौपदी मुर्मू

डॉ0 पंकज कुमारी

प्रवक्ता, राजनीति विज्ञान

मेरठ।

जब भारत अपनी आजादी का अमृत महोत्सव मना रहा है तब 25 जुलाई 2022 को द्रौपदी मुर्मू ने भारत के 15 वें राष्ट्रपति के रूप में शपथ ग्रहण की। भारत के राजनीतिक इतिहास में यह एक महत्वपूर्ण और देश के संवैधानिक लोकतंत्र को गौरवान्वित करने वाला क्षण है। देश के प्रथम नागरिक के रूप में द्रौपदी मुर्मू जी का चयन महिला सशक्तिकरण की दिशा में मील का पत्थर सिद्ध होगा। यह जनतांत्रिक व्यवस्था में जन आस्था को और प्रगाढ़ करने वाला है। यह निर्वाचन गणतंत्र के विचार की सार्थक अभिव्यक्ति भी है। द्रौपदी मुर्मू का पार्षद से देश के राष्ट्रपति पद तक का सफर साधारण से असाधारण उपलब्धि और संघर्ष की कहानी है। द्रौपदी मुर्मू का महामहिम निर्वाचित होना कई मायनों में विशेष है।

20 जून, 1958 को एक संथाली परिवार में जन्मीं द्रौपदी मुर्मू का प्रारंभिक जीवन ज्यादातर रायरंगपुर, ओडिशा में बीता। उन्होंने रायरंगपुर में ही शिक्षक के रूप में अपने सार्वजनिक जीवन की शुरूआत की। उसके बाद ओडिशा सरकार के अन्तर्गत सिंचाई विभाग में एक कनिष्ठ सहायक के पद पर कार्य किया। राजनीतिक सफर शुरू करने के लिए उन्होंने बीजेपी की सदस्यता ग्रहण की। 1997 में रायरंगपुर नगर पंचायत के पार्षद के रूप में चुनी गईं। 2000 में ओडिशा विधानसभा चुनाव में रायरंगपुर विधानसभा क्षेत्र से विधायक चुनी गईं। वह ओडिशा में बीजद और भाजपा गठबंधन सरकार के समय 2000 से 2002 तक ओडिशा की वाणिज्य और परिवहन मंत्री रहीं। 2002 से 2004 तक मत्स्य पालन और पशु संसाधन विकास मंत्री भी रहीं। उन्हें 2007 में ओडिशा विधानसभा द्वारा सर्वश्रेष्ठ विधायक के लिए नीलकंठ पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया।[1]

उन्होंने 2009 में मयूरभंज निर्वाचन क्षेत्र से लोकसभा चुनाव लड़ा लेकिन बहुमत हासिल नहीं कर सकीं। 18 मई, 2015 को उन्हें झारखंड के राज्यपाल के रूप में चुना गया। वह झारखण्ड राज्य की प्रथम महिला राज्यपाल बनीं। साथ ही वह किसी भी भारतीय राज्य की राज्यपाल बनने वाली पहली आदिवासी भी हैं। 2021 तक उन्होंने राज्यपाल के तौर पर अपनी सेवाएं दीं। उन्होंने राजभवन को जन आकांक्षाओं का जीवंत केन्द्र बनाया और राज्य के विकास के लिए तत्कालीन सरकार के साथ मिलकर शानदार काम किया। समय–समय पर अपूरणीय व्यक्तिगत त्रासदियों ने जनसेवा के उनके संकल्प को बाधित करने की चेष्टा तो की, लेकिन दुखों के पहाड़ को झेलते हुए भी उन्होंने सार्वजनिक जीवन में आदर्श के उच्चतम मानदंड़ों को स्थापित किया।

श्रीमति द्रौपदी मुर्मू का चुनाव सिर्फ एक राजनीतिक संकेतवाद नहीं है, बल्कि यह सामाजिक न्याय व परिवर्तन का द्योतक है। यद्यपि यह परिवर्तन लंबे समय से चले आ रहे प्रयासों का प्रतिफल है। परिवर्तन व सामाजिक न्याय की एक व्यापक लेकिन निश्चित लहर ऊपर से अराजनीतिक उद्वेलन के प्रतिकूल समाज रूपी नदी के गंभीर आँचल में बह रही है। श्रीमति द्रौपदी मुर्मू जमीनी स्तर पर चल रही इस व्यापक क्रान्ति की प्रतीक हैं।

न्याय व परिवर्तन की संकल्पना प्राचीन काल से ही राजनीतिक चिन्तन का महत्वपूर्ण विषय रही है। परन्तु आधुनिक युग तक आते–आते इसमें मौलिक परिवर्तन आ गया है। पश्चिमी परम्परा के अन्तर्गत न्याय के स्वरूप की व्याख्या करने के लिए मुख्यतः न्याय परायण व्यक्ति अर्थात् सच्चरित्र मनुष्यों के गुणों को न्याय की ओर प्रेरित करते हैं। इसमें सद्गुणों की तलाश की जाती है। भारतीय परम्परा में भी मनुष्य के धर्म को प्रमुखता दी जाती थी। इन दोनों परम्पराओं के अनुसार यदि सब व्यक्ति अपने–अपने कर्त्तव्य का पालन करेंगे तो समाज व्यवस्था अपने आप न्यायपूर्ण होगी।[2]

सामाजिक परिवर्तन व न्याय की इस संकल्पना में आगे बढ़ते हुए हमें यह देखना होगा कि सामाजिक न्याय की अवधारणा क्या है:–

सामाजिक न्यायः–

एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का होना जिसमें बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक व्यक्ति को समाज में समान अवसर व सुख सुविधाएं प्राप्त हों तथा विभिन्न आधारों पर राष्ट्र के सर्वोच्च पद तक पहुँचने के लिए बैरियर न हों। धर्म, जाति, लिंग, जन्मस्थान, वंश, गरीबी इत्यादि के आधार पर किसी को समाज में नीचा न देखना पड़े और न ही इन आधारों पर समाज में व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में बाधाएं आएं। सामाजिक न्याय केवल ऐसी सामाजिक व्यवस्था में मिल सकता है जहाँ आर्थिक शोषण न हो जहाँ वर्ग विभाजन न हो, जहाँ कुछ लोगों के हाथों में समाज के सारे साधन व पद न हों।

समाज में न्याय की अनुभूति लोगों को तभी से हुई होगी जब से उन्हें समाज का बोध हुआ होगा, किन्तु समय एवं समाज के रूप में परिवर्तन के साथ–साथ न्याय की अवधारणा बदलती रही है। वर्तमान समय में सामाजिक न्याय का विचार बहुत लोकप्रिय हो चुका है और सामाजिक न्याय पर बल देने के कारण ही विश्व के करोड़ों लोगों द्वारा समाजवादी व्यवस्था व लोक कल्याणकारी राज में आस्था व्यक्त की गई है। सभ्यता के विकास के साथ समाज की बुनियादी मान्यताएं बदली हैं जिससे सामाजिक न्याय के स्वरूप में निखार आया है। समाज में औचित्यपूर्ण संबंधों की खोज और न्यायपूर्ण बर्ताव की मांग में निरन्तर वृद्धि होते रहने से सामाजिक न्याय के अभिज्ञान में बहुत विस्तार हुआ है।

प्राचीन काल में विचारकों ने केवल न्याय की ही बात की, उस युग में समाज की व्यवस्था ईश्वरीय नियमों द्वारा संचालित होती थी। आम आदमी मात्र उन नियमों का पालन करता था। मध्यकाल में भी ऐसी ही स्थिति थी प्राचीन ग्रीन विचारकों में प्लेटों के विचारों का निष्कर्ष यह निकलता है कि सामाजिक न्याय वह स्थिति है जो राज्य में प्रचलित हो क्योंकि उसके अनुसार सामाजिक व राजनीतिक न्याय में कोई विभाजन नहीं।

प्लेटो के अनुसार सामाजिक न्याय समाज की वह स्थिति है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वभाव के प्रधान गुणों के अनुसार निर्धारित कार्य को करता है और जिसमें इस विशिष्टीकरण के कारण पारस्परिक निर्भरता से उत्पन्न एकल का बंधन रहता है। प्लेटो के न्याय संबंधी विचार उसके द्वारा निष्पादित मानव आत्मा के त्रिसूत्रीय विभाजन पर आधारित हैं जिसमें राज्य के तीन वर्ग सैनिक, शासक व उत्पादक वर्ग अपने कार्यों को अपनी विशिष्टता और योग्यतानुसार करते हैं। दूसरे शब्दों में यदि विभिन्न वर्ग परस्पर सौहार्दपूर्वक अपने–अपने कार्यों को सम्पन्न करते हैं तो समाज में सामाजिक न्याय की कल्पना की जा सकती है।[3]

अरस्तु के अनुसार न्याय का सरोकार मानवीय सम्बन्धों के नियमन से है। अरस्तु के न्याय के दो प्रकार हैं– वितरण न्याय और प्रतिवर्ती न्याय अथवा परिशोधन न्याय। वितरण न्याय का सम्बन्ध समाज में सम्मान या धन सम्पदा के वितरण से है। अरस्तु के सामाजिक न्याय से तात्पर्य समान लोगों के साथ समान न्याय से है।[4]

उदारवादी विचारधारा के अनुसार सामाजिक न्याय की संकल्पना के अन्तर्गत सामान्य हित के मानक से सम्बन्धित सब कुछ आ जाता है जो अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा से लेकर गरीबी और निरक्षरता के उन्मूलन तक कुछ भी हो सकता है।

हर्बर्ट स्पेन्सर की दृष्टि में सामाजिक न्याय, समाज में गुणों के आधार पर लाभ का वितरण है। उनका कहना है कि राज्य को अक्षम और कमजोर लोगों की सहायता नहीं करनी चाहिए क्योंकि ऐसा करने से दोनों को ही नुकसान उठाना पड़ता है।

18वीं सदी में कानून के समक्ष समानता सम्बन्धी सामाजिक न्याय की अवधारणा के माध्यम से सामंत वर्ग के वैधानिक अधिकारों व सुविधाओं को समाप्त किए जाने के लिए पहल की गई। 19वीं सदी में सामाजिक न्याय की समाजवादी सोच ने समाज से आर्थिक व सामाजिक विषमता के उन्मूलन पर जोर दिया। सामाजिक विचारकों का मत है कि कानून के समक्ष समानता और अवसर की समानता का कोई अर्थ नहीं जब तक कि लोगों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति में अन्तर है। फ्रेडरिक हेयर के अनुसार सामाजिक न्याय की अवधारण निरर्थक है इसके अनुसार बेकारों का भार उन लोगों पर डाल दिया जाए जो परिश्रमपूर्वक धन का उपार्जन कर रहे हैं।[5]

जॉन रॉल्स के अनुसार सामाजिक न्याय समाज में तभी सम्भव है जब सब व्यक्तियों में प्राथमिक वस्तुओं का न्यायपूर्ण वितरण हो। प्राथमिक वस्तुओं में अधिकार, स्वतन्त्रताएँ, शक्तियां, अवसर, आय, सम्पदा तथा आत्मसम्मान शामिल हैं। रॉल्स के अनुसार यदि समाज में न्याय स्थापित करना है तो इन वस्तुओं का वितरण इस प्रकार समान रूप से किया जाए कि सबसे हीनतम स्थिति वाले व्यक्ति का भी भला होना चाहिए।[6]

रॉबर्ट नॉजिक के अनुसार सामाजिक न्याय के अन्तर्गत लोगों को इस प्रकार पुरस्कृत किया जाना चाहिए जिससे वह अपने अन्दर सद्गुणों को बढ़ाने का प्रयास करें।[7]

उपयोगितावादी विचारकों बेन्थम, जे0एस0मिल, ग्रीक की सामाजिक न्याय की अवधारणा के अनुसार राज्य को ऐसे कार्य करने चाहिए जिससे अधिकतम लोगों का अधिकतम हित हो। मार्क्स, एंजेल्स, लेनिन आदि मार्क्सवादियों के अनुसार

वास्तविक सामाजिक न्याय के लक्ष्य की प्रगति के लिए उत्पादन के साधनों में निजी सम्पत्ति और व्यक्तिगत स्वामित्व को समाप्त करना पड़ेगा। इनके अनुसार सामाजिक न्याय का उद्देश्य एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के आर्थिक शोषण का अंत करना है।[8]

सामाजिक न्याय के आधारभूत तत्व हैंः स्वतंत्रता एवं समानता। स्वतंत्रता से आशय है अवरोध की अनुपस्थिति, जबकि समानता का तात्पर्य है भेदभाव की अनुपस्थिति। इन दोनों की अनुपस्थिति में सामाजिक न्याय सम्भव नहीं। सामाजिक न्याय के दो पक्ष हैंः– विकासात्मक एवं वितरणात्मक उदारवादी व पूंजीवादी विचारक विकास को महत्व देते हैं और इसके लिए वे स्वतंत्रता को आधारभूत व अनिवार्य निरूपित करते हैं। समाजवादी एवं साम्यवादी विचारक वितरण पर अधिक जोर देते हैं। उनके वितरण का आधार समानता है। ये वितरण में समानता पर बल देते हैं और योग्यता की जगह आवश्यकता को वितरण का आधारभूत तत्व निरूपित करते हैं।

नव उदारवादी एवं कल्याणकारी राज्य की धारणाओं ने सामाजिक न्याय के विकासात्मक एवं वितरणात्मक पक्षों में उपयोगी सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया है। विकास की प्रक्रिया यदि ठप्प हो जाये तो वितरण अर्थहीन हो जाता है। विकास की गति बनाये रखने से ही वितरण के उद्देश्य की सार्थक पूर्ति हो सकती है। किन्तु स्वतंत्रता पर प्रभावकारी नियंत्रण के अभाव में कुछ लोग समाज में इतने शक्तिशाली हो जाते हैं कि दूसरों के लिए जीवन का कोई अर्थ नही रह जाता। इसीलिए नव उदारवादी एवं कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के समर्थक, व्यक्ति की योग्यता और आवश्यकता में कार्यकारी सामंजस्य स्थापित किए जाने पर जोर देते हैं।[9]

भारतीय परिप्रेक्ष्यः–

सभी प्राचीन एवं मध्यकालीन समाजों की रचना ऊँच–नीच और भेदभाव का स्वरूप जन्मगत होने के कारण अधिक कठोर था। समाज जातीय व वर्गीय आधार पर असमान श्रेणियों में विभक्त था। जातिगत रचना के कारण समाज में असमानता, जन्मगत, श्रेणीबद्ध और अपरिवर्तनीय थी। विदेशी शासन के विरूद्ध संघर्ष में सफलता मिलते ही देश में सामाजिक अन्याय और भेदभाव के उन्मूलन के लिए प्रयास प्रारम्भ हुए।

योजनाबद्ध रीति से सामाजिक विकास अर्थात् न्याय सम्बन्धी कार्यक्रम शुरू किए गए। जातियों की संकटपूर्ण स्थिति नवोदित लोकतंत्र के सामने बहुत बड़ी समस्या थी, जिसे देखते हुए भावी समाज की रूपरेखा निर्धारित करने वाली संविधान सभा ने सामाजिक न्याय की स्थापना को राष्ट्र का प्रथम लक्ष्य घोषित किया।

प्रस्तावना में यह स्पष्ट उल्लेखित है कि संविधान का मूल उद्देश्य अपने सभी नागरिकों के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय तथा विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास और उपासना की स्वतन्त्रता और प्रतिष्ठा एवं अवसर की समानता तथा व्यक्ति की गरिमा एवं राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता का विकास करना है। स्मरणीय है कि संविधान की प्रस्तावना में न्याय को स्वतंत्रता, समानता और भ्रातत्व से पहले स्थान दिया है तथा न्याय की व्याख्या करते समय सामाजिक, आर्थिक न्याय को राजनीतिक न्याय की तुलना में प्राथमिकता दी गई है। ऐसा इसलिए किया गया है क्योंकि राजनीतिक न्याय का तब तक कोई अर्थ नही है जब तक कि समाज में नागरिकों को सामाजिक न्याय प्राप्त नही होता।[10]

इसके अतिरिक्त भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए अनेक संवैधानिक व्यवस्थाएं की गई हैं। संविधान के तीसरे भाग में (मौलिक अधिकारों की व्यवस्था) व चौथे भाग में (राज्य नीति के निदेशक तत्वों की व्यवस्था) में लोगों को सामाजिक न्याय प्रदान किए जाने के अनेक उपायों का उल्लेख किया गया है। संविधान के भाग तीन का अनुछेद 14 भारत के सभी नागरिकों को कानून के सामने समानता व कानून के अधीन सुरक्षा प्रदान करता है। अनुच्छेद 15 में धर्म, मूल, वंश, जाति, लिंग या जन्म के आधार पर नागरिकों के साथ भेदभाव की जगह नहीं हैं तथा अनुच्छेद 16 के अनुसार सब नागरिकों को राज्य के अधीन पदों पर नियुक्ति का समान अधिकार प्राप्त है। संविधान के अनुच्छेद 17 के द्वारा छुआछूत के तथा अनुछेद 23 व 24 द्वारा बेगार व शोषण को गैर कानूनी घोषित किया गया। इस प्रकार संविधान के तीसरे भाग की व्यवस्था के द्वारा यदि एक ओर उन बाधाओं को दूर किया गया है। जो सामाजिक न्याय की उपलब्धि में बाधक हैं तो दूसरी ओर उसके चौथे भाग की अनेक व्यवस्थाओं के द्वारा सामाजिक न्याय को सभी नागरिकों के लिए सुलभ बनाने की व्यवस्था की गई हैं।

भाग चार का अनुच्छेद 41 यदि नागरिकों को कुछ दिशाओं में काम, शिक्षा आदि पाने का अधिकार प्रदान करता है तो उसका अनुच्छेद 42 नागरिकों के लिए काम की उचित दशाएँ बनाये रखने के लिए राज्य को उत्तरदायी बनाता है। इसी प्रकार अनुच्छेद 44 द्वारा सबके लिए समान आचार संहिता की व्यवस्था, अनुच्छेद 45 द्वारा बालकों के लिए निशुल्क व अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की गई है तो अनुच्छेद 46 के द्वारा अनुसूचित व अन्य दुर्बल वर्गों की उन्नति करना राज्य का दायित्व बना दिया गया है।

निष्कर्षतः

न्याय एक ऐसा सामाजिक मूल्य है जिसके अभाव में कोई समाज व्यवस्था न तो प्रगति कर सकती है और न ही स्थायी रह सकती है। समाज में न्याय की वैधानिकता ही पर्याप्त नही है अपितु इसका व्यवहारिक रूपांतरण भी आवश्यक है। यद्यपि विगत वर्षों में काफी कुछ किया गया है जिससे अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, कमजोर वर्गों व महिलाओं की स्थिति में उल्लेखनीय सुधार भी हुआ है और गाँव से लेकर देश के सर्वोच्च पद तक इन वर्गों की भागीदार भी बढ़ी है, तथापि इस दिशा में अभी काफी प्रयास करने शेष हैं।

संविधान में न्याय को महत्व देना एक बात है और सामाजिक जीवन में न्यायपूर्ण व्यवहार करना दूसरी बात है। यदि हम सामाजिक न्याय वास्तव में स्थापित करना चाहते हैं तो हमारे लिए विचार और आचरण के बीच विंसगति को दूर करना बहुत जरूरी है। संविधान निर्माताओं ने न्याय पर आधारित समाज व्यवस्था की जो संवैधानिक रूपरेखा रखी उसी सारणी में नियोजित विकास कार्यो का आयोजन किया गया। किन्तु जैसा कि अग्निवेश (1990) का मानना है कि आजादी के समय से न्याय विकास की दिशा में चल रहे कार्यो में निहित है। गाँधी जी कहते हैं कि न्याय और विकास कार्यो की दिशा नीचे से ऊपर की ओर होनी चाहिए जो सबसे अधिक शोषित और दमित हैं, जबकि वस्तुस्थिति इसके विपरीत है। उद्योगपति पहले से अधिक धनी और गरीब और गरीब हो गया है।[11]

अन्ततः यही निष्कर्ष निकलता है कि आज सामाजिक न्याय की धारणा पहले से भी अधिक महत्वपूर्ण हो चुकी है और इसी कारण कोई भी सरकार इसकी अनदेखी नहीं कर पा रही है। वर्तमान में सामाजिक न्याय का विचार बहुत ही लोकप्रिय हो चुका है और सामाजिक न्याय पर बल देने के कारण ही विश्व में करोड़ों लोगों द्वारा समाजवादी व लोक

कल्याणकारी राज्य में आस्था व्यक्त की गई है। सत्य है कि हमारे भारतीय संविधान में भी सामाजिक न्याय को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। सामाजिक न्याय प्राप्ति की इस यात्रा में द्रौपदी मुर्मू जी का देश के राष्ट्रपति पद को सुशोभित करना माइलस्टोन के समान है।

यह उस सामाजिक परिवर्तन के सफर का सुखद पड़ाव है जो विगत वर्षों से दृष्टिगोचर हो रहा है। विगत वर्षों के दौरान लोकतांत्रिक जमीनी स्तर पर लोगों को सशक्त बनाने और दशकों से सत्तासीन कुछ विशेष वर्गों के एकाधिकार को तोड़ने का हरसंभव प्रयास किया गया हैं। यह हमारे लिए अत्यन्त गर्व का विषय ही है कि प्रधानमंत्री से लेकर हमारा अधिकांश शीर्ष नेतृत्व विनम्र एवं सामान्य पृष्ठभूमि से संबंधित है। ये सब केवल अपने अथक परिश्रम, पुरूषार्थ, मेधा और ईमानदारी के दम पर ही यहाँ तक पहुँचे हैं। यह सब सामाजिक न्याय व सामाजिक परिवर्तन के प्रतीक है। वर्तमान समय में केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में 27 ओबीसी, 12 एससी और 8 एसटी समुदाय से हैं। यह पूरी कैबिनेट का 60 प्रतिशत से अधिक है। इन वर्गों के प्रतिनिधित्व का यह ऐतिहासिक स्तर है। 2019 में भाजपा की विराट विजय के साथ लोकसभा में सबसे अधिक महिला प्रतिनिधित्व के साथ आयी। एससी/एसटी एक्ट भी मजबूत किया गया है तो साथ ही ओबीसी आयोग का सपना भी पूरा हुआ है। आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए आरक्षण देना भी सुनिश्चित किया गया है। इसके कारण ही समाज में यह भाव जागृत हुआ है कि अत्यंत गरीब पृष्ठभूमि से आने वाला व्यक्ति भी सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों से उत्पन्न चुनौतियों से पार पाकर भारत का प्रधानमंत्री बन सकता है। देश को विकास के नए शिखर तक लेकर जा सकता है।

पूर्व में दो पूर्व राष्ट्रपतियों डॉ0 एपी0 जे0 अब्दुल कलाम और रामनाथ कोविंद ने देश को प्रेरक और परिपक्व नेतृत्व प्रदान किया था। उनके नेतृत्व ने विश्वपटल पर भारत को एक नए रूप में स्थापित किया था। इसी परंपरा में द्रौपदी मुर्मू सामाजिक न्याय और सामाजिक परिवर्तन की हमारी अवधारणा को सदा–सदा के लिए प्रतिष्ठित करने हेतु हमारे इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण प्रेरणा स्रोत बनेंगी।

डॉ0 एपी0 जे0 अब्दुल कलाम, श्रीमति प्रतिभा पाटिल, रामनाथ कोविंद, नरेन्द्र मोदी व वर्तमान महामहिम श्रीमति द्रौपदी मुर्मू, भारत रत्न बाबा साहेब अंबेडकर, बापू महात्मा गांधी जी और पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के बताए मार्ग के सुखद चिन्ह हैं। ये सब सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास और सबका प्रयास के सिद्धान्त के साथ समाज के सभी वर्गों के उत्थान के प्रतीक हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था का आधार व मुख्य लक्ष्य राजनीतिक सत्ता का व्यक्तिगत लाभ नहीं बल्कि सामाजिक परिवर्तन और विकास की दौड़ में पिछड़ गए लोगों के उत्थान और उन्हें समाज की मुख्य धारा में लाने हेतु प्रयास करना होता है। जनजातीय गौरव दिवस, आदिवासी स्वतंत्रता सेनानी संग्रहालय, खानाबदोश और अर्धघुमंतू जनजातियों का सशक्तिकरण, एम एस पी के अन्तर्गत आने वाले वन उत्पादों की संख्या में वृद्धि और वंचितों में आत्मविश्वास और गौरव की भावना उत्पन्न करने जैसे निर्णयों ने आदिवासी के विकास को एक नया आयाम दिया है। लोकतांत्रिक व्यवस्था की सफलता इसी में निहित होती है कि समाज के हाशिये पर रह रहे समुदायों, वर्गो, जातियों व व्यक्तियों तक सामाजिक न्याय व परिवर्तन की लहर पहुँचा सके।

विदेशी आक्रांताओं और स्वतंत्रता के पश्चात स्वार्थी राजनीतिक दलों ने इन वर्गों को सेवक या वोट बैंक बना दिया था। यह सुखद है कि वर्तमान राजनीतिक नेतृत्व उन्हें पुनः सामाजिक सम्मान और आत्मगौरव प्रदान करना चाहता है। भारत में पुनः अपाला, घोषा, लोपामुद्रा, गार्गी, मैत्रेयी जैसी महिलाओं के ऋषित्व की पूजा हो। मनुष्य का जन्म से नहीं, कर्म

से मूल्यांकन हो सामाजिक सोच और व्यवहार में महिलाओं, आदिवासी और दलितों को पर्याप्त सम्मान प्राप्त हो। वर्तमान महामहिम श्रीमति द्रौपदी मुर्मू वंचितों की आवाज, सामाजिक न्याय व परिवर्तन की मजबूत कड़ी और निश्चित ही ''न्यू इंडिया'' की प्रतीक हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थः–

(1) नड्डा जगत प्रकाश – ''सामाजिक परिवर्तन की पर्याय द्रौपदी मुर्मू'' पृ0 सं0 8, 18 जून, 2022, दैनिक जागरण, मेरठ।

(2) कुमार देवेन्द्र – ''भारत में सामाजिक न्याय की संकल्पना और डॉ भीमराव अम्बेडकर का योगदान'' पृ0 सं0 562।

''भारतीय राजनीति विज्ञान शोध पत्रिका, भारतीय राजनीति विज्ञान परिषद की अर्धवार्षिक शोध पत्रिका, वर्ष–प्रथम, अंक द्वितीय, जु0 दि0 2009, चौ0 चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ।

(3) कश्यप एस0पी0 – ऑनेस्ट एर्फट नीडेड फॉर सोशल जस्टिस, कुरूक्षेत्र, 1990, पृ0 सं0 37–41

(4) शर्मा उर्मिला एवं शर्मा एस0 के0 – पाश्चात्य राजनैतिक चिन्तन, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स, नई दिल्ली, 1997

(5) हेयर फ्रेडरिक – Law Legislation and Liberty, Vol-2

(6) रॉब्स जॉन – ए थ्योरी ऑफ जस्टिस, 1972, पृ0 सं0 104

(7) Nozic Robart – Aonarchy, State and Utopia 1974 – Page No.-9

(8) नायक, बी0 – ऑन इक्वैल्टी एण्ड डिस्ट्रीव्यूटिव जस्टिस इकोनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, 1991, पृ0 सं0 583–90

(9) सिंह राम गोपाल – ''सामाजिक न्याय लोकतंत्र और जाति व्यवस्था'' रावत पब्लिकेशन, जयपुर एवं नई दिल्ली, 1999 पृ0 सं0 19।

(10) कश्यप एस0पी0 – ''ऑनेस्ट एर्फट नीडेड फॉर सोशल जस्टिस, कुरूक्षेत्र, 1990, पृ0 सं0 37–41

(11) अग्निवेश, एस0 – सोशल जस्टिस ट्रूथ, कुरूक्षेत्र, 39, 1990, पृ0 सं0 43–45